कठोपनिषद् में नचिकेता द्वारा याचित तीन वरों का विष्लेषण

डॉ० नमिता कुमारी
संस्कृत विभाग
जय प्रकाष विष्वविद्यालय, छपरा

कठोपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा के अन्तर्गत आता है । इस कारण इस उपनिषद् का नाम कठोपनिषद् पड़ा ।

इस उपनिषद में महानअध्यात्म तत्त्व का गंभीर विश्लेषण किया गया है। इसमें दो अध्याय है और प्रत्येक अध्याय में 3–3 वल्लियाँ हैं । तैत्तिरीय आरण्यक में संकेत रूप में विद्यमान नचिकेता की उपदेशप्रद कथा से उसका प्रारम्भ होता है । नचिकेता के विशेष एवं बारंबार आग्रह करने पर थमाचार्य उसे अध्यात्म तत्व का मार्मिक तथा हृदयंगम उपदेश देते हैं ।

गोतम, उद्यालक या वाजश्रवा नामक ऋषि ने सर्वमेध अथवा विश्वजीत नामक यज्ञ किया । इस यज्ञ में अपना सर्वस्व दान कर देना पड़ता है अतः उसने अपना सब कुछ समर्पण करके इस यज्ञ को किया । उस समय गोधन ही सर्वश्रेष्ठ धन माना जाता था । इस ऋषि के एक पुत्र था जिसका नाम नचिकेता था । उसके पिता ने कुछ उत्तम गायों को अपने पुत्र नचिकेता के लिए सुरक्षित रख लिया तथा कुछ न देने योग्य वृद्धा गायों का दान करना प्रारम्भ किया । इस प्रकार अदेय वस्तुओं का दान में देना शास्त्र विरूद्ध कहा गया है तथा ऐसी अदेय वस्तुओं आदि को दान में देने से पाप ही लगा करता है और परिणामस्वरूप नरक का भागी बनना पड़ता है । इस सिद्धान्त को नचिकेता भलीभांति जानता था । उसने सोचा कि इन अदेय गायों का दान करने से पिता को पुण्य के स्थान पर पाप ही लगेगा और परिणामस्वरूप वे नरक के ही भागी होंगे । पुत्र का कर्त्तव्य है कि वह अपने पिता को नरक में जाने से बचाये (पुत्र शब्द की व्युत्पत्ति ही इस अर्थ की द्योतक है)–पुं नरकात् त्रायते इति पुत्रः'' । इसके अतिरिक्त–मनुस्मृति में भी पुत्र शब्द के वास्तविक अर्थ का उद्घाटन करते हुये स्पष्ट किया गया है –

पुन्नाम्नों नरकाद् यस्माद् त्रायते पितरं सुतः ।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।। मनु० 9/135।।

इस बात को ध्यान में रखते हुए उसने निर्णय किया कि पिता मेरे मोह के चक्कर में फँसे हुए हैं और इसी कारण उन्होंने कुछ गायें मेरे हेतु बचा रखी है । मैं ही उनका सर्वाधिक प्रिय व्यक्ति हूँ । 'सिऋान्ततः सर्वमेध–यज्ञ में अपना कहा जाने वाला सबकुछ दान दे देना पड़ता है ।' इस दृष्टि से उन्हें मेरा भी दान करना ही होगा । अतः उस स्थिति के आने से पूर्व मैं ही यदि अपने पिता से पूछ लूँ कि आप मुझे किसको दान में देंगे ? तो ऐसा हो जाने पर मेरे कारण बची हुयी उत्तम गायों का ही वे दान करेंगे और अदेय गायों का दान न करेंगे क्योंकि 'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी' । अतः उसने अपने पिता से तीन बार पूछा कि आप मुझे किसको दान में देंगे । अनेक बार पूछने पर पिता उद्दालक को क्रोध हो आया और उनके मुख से निकल पड़ा कि मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ । किन्तु ऐसा कहने के पश्चात् पिता उद्दालक को शोक व दुःख होने लगा । नचिकेता ने जब यह देखा कि मेरे पिता को अपने कहे हुए का बड़ा ही दुःख व पश्चाताप हो रहा है तो वह अपने पिता से कहने लगा कि आप इसका शोक न कीजिये और अपने से पूर्व के तथा इस समय के भी उन महापुरुषों को देखिये कि वे जो कह देते है, वही करते हैं तथा उस सम्बन्ध में शोक भी नहीं करते हैं । आप भी वैसा ही कीजिए ।

इसके अनन्तर नचिकेता मृत्यु (यम) के समीप चला जाता है । वह जब उनके घर पहुँचता है तो उसे ज्ञात होता है कि 'यम' घर पर विद्यमान नहीं हैं । वह बिना अन्न–जल लिये ही उनके दरवाजे पर पड़ा रहता है । तीन दिन पश्चात् यम आते है तो उनकी पत्नी उनको बतलाती है कि अपने दरवाजे पर बिना अन्न–जल को ग्रहण किये 3 दिन से अतिथि पड़ा हुआ है । जिस गृहस्थ पुरुष के दरवाजे पर इस प्रकार से भूखा अतिथि पड़ा रहा करता है उसका सम्पूर्ण पुण्यकर्म आदि नष्ट हो जाया करता है । अतः आप सर्वप्रथम इस अतिथि को प्रसन्न करने का प्रयास करें । यम नचिकेता के समीप जाकर उनको नमस्कार कर कहते हैं कि आप हमारे दरवाजे पर तीन दिन तक बिना अन्न–जल लिये हुए पड़े रहे हैं अतः प्रतिदिन के हिसाब से एक–एक वर अर्थात् कुल तीन वरों की याचना हमसे कर लीजिये ।

नचिकेता ने जिन तीन वरों की याचना यम से की है उन तीनों का सम्बन्ध क्रमशः इस लोक, परलोक ओर आनन्दलोक अथवा विष्णु के परमधाम से है। उसके प्रथम वर का सम्बन्ध इस लोक से है । वह इस लोक में मृत्यु को प्राप्त कर यम के समीप पहुँच चुका है । अन्तिम समय में उसकी इस लोक से सम्बन्धित केवल एक ही इच्छा अवशिष्ट रह गई

थी और वह थी कि उसके बार–बार प्रश्न करने से उसके पिता उससे असन्तुष्ट हो गये थे तथा उनमें क्रोध का विकार भी उत्पन्न हो गया था और बाद में उनको मेरे यहाँ चले आने से शोक भी था । पुत्र का कर्तव्य है कि वह अपने माता–पिता को अपने आचरण एवं व्यवहार द्वारा प्रसन्न तथा शान्त–मन रखे । 1/1/10–11 में इसी पुत्र के कर्तव्य का निम्न प्रकार से वर्णन प्रस्तुत किया गया है –

पुत्र पिता को (शान्तसंकल्पः) शान्त और प्रसन्नचित्त रखे, (सुमनाः) उत्तम मन से आनन्दयुक्त रखने का सदैव प्रयास करता रहे । (वीतमन्युः) उसका क्रोध दूर करे और (प्रतीतः) उत्तम व्यवहार करने की अनुकूलता उसके लिये बनाये रखे । वह (सुखं रात्रीः शयिता) ऐसी व्यवस्था करे कि जिससे रात्रि के समय पिता को उत्तम निद्रा आये ।

जिस घर में ऐसे पुत्र हों वही आदर्श गृहस्थ–गृह कहा जा सकता है । पुत्र–पुत्रियों की शिक्षा ऐसी ही होनी चाहिये । इस प्रकार की शिक्षा से गृहस्थाश्रम सदैव सुखपूर्ण होता है ।

इस लोक से सम्बन्धित नचिकेता की यही इच्छा थी कि उसके पिता उससे प्रसन्न रहें तथा उनका क्रोध नष्ट हो जाये (कि जिसके विकार के कारण मनुष्य कार्य का अकार्य कर बैठता है । संभव था कि उसका पिता भी कोई ऐसा अकार्य कर बैठे कि जिससे उसका भविष्य ही बिगड़ जाय, अतः नचिकेता को अपने पिता के सम्बन्ध में इस प्रकार के चिन्ता थी ।) और वे शान्तमन होकर अपने यज्ञ को पूर्ण करें तथा उनका भविष्य सुन्दर हो । अतः उसका प्रथम वर पितृ–परितोष सम्बन्धी था । आचार्य यम ने इस वर को उसे ज्यों का त्यों प्रदान किया ।

द्वितीय वर परलोक–विषयक है । इस वर में नचिकेता ने आचार्य यम से स्वर्ग की साधनभूत उस अग्नि के बारे में जानना चाहा है कि जिसको जानकर मनुष्य स्वर्गलोक की प्राप्ति कर लेता है, जहाँ पहुँचकर वह सांसारिक दुःखों और कष्टों से पृथक् होकर शान्ति, प्रसन्नता एवं आनन्द की अनुभूति किया करता है ।

वस्तुतः मनुष्य को शास्त्रों का अध्ययन कर अपनी ज्ञानाग्नि को उद्दीप्त करना चाहिये । माता, पिता एवं आचार्य इन तीनों के द्वारा मानव ज्ञान की प्राप्ति किया करता है तथा संस्कार–सम्पन्न बनता है । इस प्रकार ज्ञानार्जन कर तथा संस्कार–सम्पन्न बनकर यज्ञ, अध्ययन और तप अथवा दान कर्मों का आचरण करता हुआ सब प्रकार के सांसारिक कष्टों

और दुःखों से मानव अपने को पृथक् कर लिया करता है और फिर इस भाँति शोकरहित होकर प्रसन्नता का अनुभव किया करता है। (कठो० 1/1/17–19।।)

अतः स्वर्गलोक की साधनभूत इस ज्ञानाग्नि को भलीभाँति प्रज्वलित रखना ही परलोक की प्राप्ति के निमित्त महान् साधन है ।

तृतीय वर आनन्द'लोक की प्राप्ति विषयक है । इस लोक की प्राप्ति का प्रधान–साधन आत्मज्ञान है । अतः नचिकेता का यह तृतीय वर माँगना आत्मतत्त्व विषयक है ।

ज्ञान–प्राप्ति के मार्ग में विघ्न उपस्थित करने वाले हैं – भोग । जो भोगों में फँसता है वह ज्ञान प्राप्त नही कर सकता है । मनुष्य के समक्ष दो प्रकार के पदार्थ आकर उपस्थित हुआ करते हैं (1) वास्तविक और सच्चा कल्याण करने वाले पदार्थ और (2) क्षणिक सुख प्रदान करने वाले पदार्थ । इनमें से सच्चा कल्याण प्राप्त कराने वाले पदार्थो अथवा ज्ञान–मार्ग का आश्रय प्राप्त करने वाले व्यक्ति का सदैव कल्याण ही होता है । किन्तु जो क्षणिक सुख प्रदान करने वाले सांसारिक पदार्थों अथवा भोग–मार्ग का अवलम्बन लेकर जीवन यापन किया करता है वह संसार के आवागमन के (जन्म और मृत्यु के) बन्धन में सदैव बँधा रहा करता है । इन्हीं दो प्रकार के मार्गों (साधनों–ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग अथवा श्रेयमार्ग और प्रेय मार्ग) का वर्णन कठोपनिषद् के निम्नलिखित मन्त्रों में किया गया है –

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषँसिनीतः ।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हयितेऽथधि उप्रेयो वृणीते ।।
कठो० 1/2/1।।

श्रेयश्च प्रेयश्च् मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः ।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते, प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ।।
कठो० 1/2/2।।

प्रायः लोगों की प्रवृत्ति भोगों को प्राप्त करने की ही ओर रहा करती है। विरला ही कोई व्यक्ति होता है कि जो ज्ञानमार्ग का पथिक बनकर उस आत्मतत्त्व की प्राप्ति कर इच्छुक हुआ करता है । अनेक व्यक्ति आत्म–ज्ञान विषयक उपदेशों का श्रवण मात्र ही करते हैं अतः वे वास्तविक ज्ञान की उपलब्धि नहीं कर पाते । इस ज्ञान का योग्य उपदेष्टा तथा श्रोता कठिनता से ही प्राप्त होता है अर्थात् कोई विरला ही हुआ करता है । योग्य गुरु के

पास से ही उस आत्मतत्त्व विषयक–ज्ञान को योग्य रीति से प्राप्त करना चाहिये । मानव का वास्तविक कल्याण इसी में है –

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः श्रृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः ।
आश्चर्योऽस्य वक्ता कुषलोऽस्य लब्धाऽऽचर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ।।
न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः ।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति, अणीयान्ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ।।
नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ।
यान्त्वमापः सत्यधृतिर्वतासि त्वाहङ् नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ।।

कठो० 1/2/7–9।।

परमात्मा ने मनुष्य की इन्द्रियों को बहिर्मुख बनाया है । इसी कारण मानव बाह्य–विषयों को तो देखता है किन्तु अपनी अन्तरात्मा को इन इन्द्रियों के द्वारा देखने में असमर्थ रहा करता है । कोई विरला बुद्धिमान पुरुष ही अमृतत्व की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता हुआ उस अन्तरात्मा का दर्शन कर पाता है । मूर्ख पुरुष सांसारिक विषय–भोगों में लिप्त रहा करते हैं और परिणामस्वरूप वे मृत्यु के जाल में फँसे रहा करते हैं । केवल बुद्धिमान् पुरुष ही अमृतरूप आत्मा के ज्ञान को प्राप्त कर इन अस्थायी विषयों की ओर नहीं झुकता हे । कठो० 2/1/1–1।।

अजन्मा आत्मा का यह शरीररूपी नगर है । इस शरीररूपी नगर के ग्यारह द्वार हैं । अनुष्ठान करने वाला व्यक्ति यहाँ दुःख अथवा शोक का अनुभव नहीं किया करता है; अपितु इसके विपरीत वह दुःखों से छुटकारा प्राप्त कर मुक्त हो जाता है । कठो० 2/2/1।।

शरीर के नष्ट हो जाने (मर जाने) पर जो अवशिष्ट रह जाता है वही यह आत्मा है । प्राणादिकों के द्वारा कोई भी प्राणी जीवित नहीं रहा करता है । इससे भिन्न जो तत्त्व है उसी के द्वारा व्यक्ति जीवित रहा करता है । मरने के पश्चात् इस तत्त्व का क्या होता है ? यह जो प्रश्न नचिकेता ने किया था, उसका उत्तर यह है कि जैसा जिसका ज्ञान एवं कर्म हुआ करता है, उसी के अनुसार वह फल की प्राप्ति भी किया करता है । कुछ जीव उत्तम योनि को प्राप्त करते हैं और कुछ स्थावर भी होते हैं – कठो० 2/2/4–7।। फल की प्राप्ति का नियामक एवं न्याय के अनुसार फल का निर्णायक परब्रह्म परमात्मा है कि जो सर्वव्यापक तथा सर्वशक्तिमान् आदि अनन्त गुणों से युक्त है । अतएव साधक के लिये यह आवश्यक है

कि वह शरीर का नाश होने से पूर्व ही इस आत्मा एवं परमात्मा के ज्ञान को प्राप्त कर मनन एवं ध्यान के द्वरा उस महान् एवं विभु भगवान् को प्राप्त कर ले । इसी से साधक को लाभ होगा । जैसा बिम्ब का प्रतिबिम्ब शीशे में दिखलाई पड़ा करता है अथवा जैसा जल में प्रतिबिम्ब दिखलाइ पड़ा करता है और जैसे छाया ओर आतप दृष्टिगोचर होते हैं वैसे ही ये जीवात्मा और परमात्मा भी है । कठो० 3/3/4–5।।

जब पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ स्तब्ध हो जाती हैं तथा बुद्धि भी चेष्टा–विहीन हो जाती है तब इस अवस्था को ''परमगति'' कहा जाता है । दूसरे शब्दों में इसी को योग भी कहा जा सकता है ।

जब साधक पुरुष की भोग–सम्बन्धी सभी वासनायें दूर हो जाती हैं तब वह अमरत्व को प्राप्त कर लेता है । ऐसी अवस्था में उसे ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है । हृदय की सम्पूर्ण ग्रन्थियाँ खुल जाती है ओर तब मानव अमर हो जाता है । कठो० 2/3/14–15 ।।

हृदय से 101 नाड़ियाँ निकली हैं, इनमें से एक नाड़ी सिर की ओर जाती है । इस नाड़ी के द्वारा जिस व्यक्ति का प्राण निकलकर अन्त हुआ करता है वह व्यक्ति अमरत्व अथवा मोक्ष अथवा मुक्ति अथवा विष्णु के परमधाम अथवा उस ब्रह्म के आनन्द की प्राप्ति कर लिया करता है । अन्य नाड़ियों से गमन करने वाला व्यक्ति अन्य प्रकार की गतियों को प्राप्ति किया करता है । कठो० 2/3/16 ।।

संदर्भ –

1. मनुस्मृति – 9/135
2. अथर्ववेद – 11–5.3
3. कठोपनिषद् – 1–1–1.–11
4. कठोपनिषद् – 1–1–17–19
5. कठोपनिषद् – 1–2–1
6. कठोपनिषद् – 1–2–2
7. कठोपनिषद् – 1–2–7–9
8. कठोपनिषद् – 2–1–1–3

9. कठोपनिषद् – 2–2–1

10. कठोपनिषद् – 2–2–4–7

11. कठोपनिषद् – 3–3–4–5

12. कठोपनिषद् – 2–3–14–15

13. कठोपनिषद् – 2–3–16